REVIEW OF RESEARCH
IMPACT FACTOR : 5.2331(UIF) UGC APPROVED JOURNAL NO. 48514 ISSN: 2249-894X
VOLUME - 7 | ISSUE - 7 | APRIL - 2018

मिथिला का बौद्धिक विकास 14वीं से 18वीं शताब्दियों के बीच

डॉ. भुवनेश्वर कुमार भारती
बी० ए०, एम० ए०, पी–एच० डी०
(इतिहास विभाग)
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वर नगर, दरभंगा.

भूमिका

मिथिला का बौद्धिक विकास 14वीं से 18वीं शताब्दियों के बीच अपने उत्कर्ष पर आया। संस्कृत शिक्षा के क्षेत्र में इसे सर्वमान्य ख्याति इसी समय में प्राप्त हुई। फलतः नालंदा विक्रमशीला आदि की तरह इस मिथिलांचल में विश्वविद्यालय यद्यपि स्थापित नहीं हो सका। किंतु मान्यता विश्वविद्यालय के सदृश ही इसे भी प्राप्त हो गयी। विशेषकर न्याय दर्शन की उच्च शिक्षा प्राप्ति हेतु देश के भिन्न–भिन्न भागों से विद्यार्थी मिथिला में पहुंचते थे। मिथिला की इन विद्याओं को राज्याश्रय भी प्राप्त होता था। कर्णाट क्षत्रिय तथा ओइनवार ब्राह्मण कुल के राजाओं विद्वानों पंडितों को पूर्ण संमान तथा सहायता भी थी। भारत मुसलमान शासन की स्थापना काल में भी ओइनवार ब्राह्मणों का राज्य मिथिला पर था जो दिल्ली के मुसलमान बादशाह की छत्रछाया में ही शासन संचालन करते थे। 16वीं शताब्दी तक मुसलमानों के आधिपत्य में होने के बावजूद भी मिथिला के बौद्धिक विकास पर कोई खास बुरा असर नहीं आया, यह बौद्धिक विकास की धारा हास को नहीं प्राप्त हो सकी।

13वीं शताब्दी में ही मधुबनी जिले के निकट के ग्राम मंगरौनी में ''नव्य न्याय पद्धति'' के जनक पं. गंगेश उपाध्याय का आविर्भाव हुआ। दरभंगा से 12 मील दक्षिण पूर्व के करियन ग्राम में इनका विद्यालय था। अपने ग्रंथ ''तत्त्व चिंतामणि'' के माध्यम से भारतीय दर्शन की चिंतनधारा में इन्होंने एक नया मोड़ दिया। न्याय दर्शन की प्राचीन प्रचलित धारा के स्थान पर नया मार्ग दर्शाया तथा पदार्थ विवेचन की जगह प्रमाण विवेचन पर बल दिया। चार प्रकार के प्रमाणों की मान्यता दी। ये ही चार प्रमाण– प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान एवं शब्द किसी विषय के ज्ञान में अंतिम निर्णय तथा निष्कर्ष पर पहुंचने में उपाय सिद्ध हुए। इस तत्व चिंतामणि ने अपनी नयी विचारधारा के द्वारा तार्किकों के मन मानस में उथल–पुथल एवं क्रांति ला दिया जिसका प्रभाव पश्चाइती तत्व चिंतकों के मस्तिष्क पर भी पड़ा। अनेक भाष्य उदभाष्य तथा टीकाएं भी इस मूल ग्रंथ तत्वचिंतामणि पर लिखी गई और इस प्रकार इस ग्रंथ मणि ने बुद्धि जीवियों के बीच सर्वप्रियता प्राप्त की। इस प्रकार से मिथिला में जो प्रसिद्ध नैयायिकों का प्रवाह चला वह अपने अनन्तान्त स्वरूप में आज तक विद्यमान है। जिनमें वर्द्धमान उपाध्याय, पक्षधर मिश्र, वसुदेव मिश्र, रूचिदत्त मिश्र, भवनाथ मिश्र (अयाची मिश्र) शंकर मिश्र, वाचस्पति मिश्र, केशव मिश्र, भगीरथ ठाकुर, गोविन्द ठाकुर, महेश ठाकुर आदि सवोल्लेख है।

वर्द्धमान उपाध्याय गंगेश उपाध्याय के ही पुत्र थे। इन्होंने तत्वचिंतामणि प्रकाश, न्याय निबंध प्रकाश, न्याय परिशिष्टप्रकाश, किरणावलि प्रकाश, न्याय निबंध प्रकाश, न्याय परिशिष्ट, प्रकाश, किरणावलि प्रकाश, न्याय कुसुमांजलि प्रकाश, न्यायलीलावती प्रकाश एवं खंडन खाथ प्रकाश नामक ग्रंथ लिखा। खंडनखाथ प्रकाश श्री हर्ष द्वारा लिखित वेदांत विषयक ग्रंथ खंडन खंड खाद्य पर भाष्य ग्रंथ है। माधवाचार्य विरचित सर्वदर्शन संग्रह में इनका चर्चित होना पं. वर्द्धमान उपाध्याय की प्रसिद्धि का ही द्योतक है। पक्षधर मिश्र का परिचय यद्यपि इसी शोध प्रबंध में अन्यत्र भी प्रसंगवश किया गया है फिर भी कुछ यहां भी उल्लिखित करना आवश्यक है अतः श्रीपक्षधर मिश्र का समय 15वीं शताब्दी का है। इनका असली नाम जयदेव था। किंतु शास्त्र के जिस किसी पक्ष

को पकड़ कर ये चर्चा या शास्त्रार्थ प्रारंभ कर देते थे लगातार एक पक्ष तक उसी का विश्लेषण करते रह जाते थे। एक पक्ष तक विश्लेषण करते रहने की वजह से इनका उपनाम ही पक्षधर को धारण करने वाला पक्षधर पड़ गया। यह भी चर्चा है कि जिस शास्त्रीय पक्ष को ये ग्रहण कर लेते उसका पक्ष प्रतिष्ठापन ये अपनी बुद्धिमत्ता एवं तर्कशक्ति से पूर्ण कर के ही दम लेते थे। अपने पक्ष की प्रामाणिकता को अवश्य ही सिद्ध कर छोड़ते थे। और जयदेव मिश्र के बदले पक्षधर मिश्र नाम से ही विख्यात हो गये। इनके द्वारा रचित पुस्तकों में तत्वचिंतामणि आलोक, द्रव्य पदार्थ तथा लीलावती विवेक प्रमुख है। इन्होंने विष्णु पुराण की प्रतिलिपि भी तालपत्रों पर उतारी थी। इस तालपत्र में अंकित शब्दों के आधार पर इनका ज्ञातृकाल 1452 ई. प्रमाणित होता है।

वसुदेव मिश्र जो कि पक्षधर मिश्र के ही भतीजा (मातृ पुत्र) एवं शिष्य भी थे, ने भी गंगेश उपाध्याय रचित तत्वचिंतामणि पर तत्वचिंतामणिटीका नामक भाष्य प्रस्तुत किया। इन्हें न्याय सिद्धांत सारभिज्ञ का विशद प्राप्त था। रूचिदत्त मिश्र भी पक्षधर मिश्र के ही शिष्य थे। इन्होंने तत्वचिंतामणि प्रकाश एवं न्याय कुसुमांजलि प्रकाश मकरन्द नामक उल्लेख ग्रंथो की रचना की।

श्री शंकर मिश्र दरभंगा जिलान्तर्गत पाहीटोल सरसो के (भवनाथ मिश्र) अयाची मिश्र के पुत्र थे। ''शंकर मिश्रक निवासी सरिसवहि में छलैन्ह। हुनक घर डीह तथा चौपाठीक चिंह अद्यापि वर्तमान अछि। ओहि गामक प्रसङ्ग में कवि गंगानंद भृङ्गदूत नामक खंडकाव्य में लिखैत छथि।

''मीमांसायाः श्रवण सरसाशेमुषीताव की चेत्।
चित्ते चेत्ते किमपि कविताकर्णने कौतर्क वा।
तत्र भ्राम्य न बुधजनचतुः पाठिकाभिस्तदा त्वं
शौभाशालिप्रिय सरिसवग्रामर त्नं परीयाः।।''

श्री शंकर मिश्र की प्रतिमा का ज्ञान उस प्रसंग के वर्णन से भी स्पष्ट हो जाता है कि एक समय अपनी पांच वर्ष की अवस्था में ही जब ये बालमंडली में खेल रहे थे, उसी समय महाराजा शिवसिंह की सवारी गुजर रही थी। महाराज ने प्रतिभाशाली उस बालक को देखकर उन्हें नजदीक में बुलाकर उनसे कुछ प्रश्न किया। उत्तर में अपना या दूसरे का श्लोक सुनाऊं कहते हुए, अपनी इस अल्पायु में भी अपना बनाया श्लोक पद सुनाया–

''बालोऽहं जगदानन्द न मे वाला सरस्वती।
अपूर्ण पञ्चमे वर्ष वर्णयामि जगत्रयम्।।''

तथा पुनः महाराज के आज्ञानुसार अपना तथा दूसरों का मिश्रित श्लोक पद सुनाने के के क्रम में–

''चलितश्च कितश्छन्नः प्रमाणे तब भूपते
सहर्षशीर्षा पुरूषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।।''

इसुनि महाराज प्रसन्न भय कौशाध्यक्ष के आज्ञा देलथीन्ह जे एहि नेनाकें तौशखाना लय जाउ जतवा वस्तु अपने सं लय जाय सकथि ततवा लेवे देवैन्हि।

इनके द्वारा निर्मित पुस्तकों में न्यायशास्त्र तथा वेदान्त पर–

1. तत्वचिंतामणि मयूख
2. वैशेषिक उपस्कर
3. भेदरत्न प्रकाश
4. अमेदधिक्कार

प्रधान एवं सर्वप्रसिद्ध है। शंकरामिश्रक ग्रंथाबलि[3] रूप में–

1. गौरी दिंबर प्रहसन
2. कृष्ण विनोद नाटक
3. मनोभव पराभव नाटक

4. रसार्णव
5. दुर्गा टीका
6. छन्दोगान्हिकोद्धार
7. वादि विनोद
8. वैशेषिक सूत्र पर 'उपस्कर'
9. कुसुमांजलि पर 'आमोद'
10. खंडन खंड खाद्य टीका अंकित है।

अयाची मिश्र (भवनाथ मिश्र)– शंकर मिश्र के पिता अयाची मिश्र थे जिनका यह उपनाम इसलिये ही ख्यात हुआ कि वे यद्यपि ऐसे अकिंच थे कि शंकर मिश्र के जन्म के समय चमैन को देने योग्य कोई वस्तु घर में न देखकर उनकी पत्नी ने चमैन से कहा था कि इस बालक की प्रथम उपार्जित कमाई तुम्हारी ही होगी।[25]

''ओहि दुर्गतावस्था में शंकर मिश्रक जन्म मेलैन्ह ओहि हर्षक
समय में चमहनि इनाम मंगलकैन्हि हुनक माय महलथीन्हि जे
हिनक प्रथमोपार्जित धन तोहरहि देबौक ओहो बेचारी तत
बहि सन्तुष्टि मय चलि गेल।''

अपनी बाड़ी से उपजी साक बेल खाकर समय काटने तथा विद्यार्थियों को पढ़ाते थे किंतु किसी से किसी वस्तु की याचना नहीं करते थे–

''शंकर मिश्रक बाप भवनाथ मिश्र बहुत भारी नैयायिक रहथि
सतत विद्यार्थी के पढ़ावथि, आजन्म ककरहुसं कोनो वस्तुक
याचना नहि कयलन्हि अपना बाड़ी में नेकुना, खम्हारू,
अकेल, बेल, साग इत्यादि जे अनायास उत्पन्न होइन्ह
ताहि सं जीवन यात्रा निर्वाह करथि।''

शंकर मिश्र संस्कार सम्पन्न तथा अध्ययनोपरांत प्रोढ़ होने पर इनके पिता ने काशीवास की इच्छा व्यक्त की और काशी निवास किया। काशी में भी छात्रगण इनसे न्याय वैशेषिक दर्शन के गूढ़ तत्वोंरका अध्ययन करने इनके पास आते रहते थे।[26] अंत में वैदान्त परिशीलन करते हुए उन्होंने मुक्ति प्राप्त की। इनके ग्रंथों में– (1) मुरारी नाटक टीका, (2) खंडन खंड साद्य टीका, (3) नय विवेक प्रसिद्ध ग्रंथ है जिसकी उल्लेख पं. परमेश्वर झा ने अपनी पुस्तक मिथिला तत्व विमर्श के पृष्ठ 199 में किया है। वाचस्पति मिश्र नाम के दो पं. विद्वान् हो चुके हैं। मिथिला तत्व विमशंकार ने अपनी पुस्तक में पालिवाड़ समौलि मूल के एक ब्राह्मण वाचस्पति भि का उल्लेख किया है, जो व्याकरण न्याय मीमांसा धर्मशास्त्र आदि विषयों में अति प्रवीण थे। इनकी कृतियों में उपलब्ध ग्रंथीं में–

1. आचार चिंतामणि
2. विवाद चिंतामणि
3. व्यवहार चिंतामणि
4. शुद्धि चिंतामणि
5. तीर्थ चिंतामणि
6. श्राद्ध चिंतामणि
7. षोडश महादान निर्णय
8. कृत्य प्रदीप
9. कृत्य महार्णव
10. कृत्य प्रदीप
11. पितृभक्ति तरंगिणी

आदि हैं। किंतु इनकी कुल रचनाओं के संबंध में कहा गया है कि–

''श्रुति अछि जे 49 टा ग्रंथ हिनक बनाओल अछि। परंतु वृद्धावस्था में भैरवसिंहक पुत्र रू. ना. रामभद्रक आज्ञा सं पितृभक्ति तरंगिणी ब नौलन्हि, तकरा अंत में श्लोक छैन्ह जे–

शास्त्रे दशस्मृतौ त्रिंशन्निबन्धा यैन यौवने।
निर्मितास्तेनचर में वयस्येष विनिर्ममे।।

एहि अनुसारे 41 ग्रंथ सिद्ध होइत अछि।'' एक दूसरे वाचस्पति मिश्र भी हुए है। कहा जाता है कि वाचस्पति मिश्र (द्वितीय) ने दर्शनशास्त्र पर 10 ग्रंथ लिखे थे जिसमें निम्नांकित संप्रति प्राप्त है– (1) अनुमान खंड टीका, (2) न्याय सूत्रोद्धार तथा (3) खंडनखंडोद्धार। इनको अभिनव वाचस्पति मिश्र भी कहा जाता है। इन्होंने स्मृति पर भी ग्रंथों की रचना की थी। इस कारण से भी इनकी प्रसिद्धि अधिक हुई थी।

वाचस्पति मिश्र प्रथम के पुत्र नरहरि मिश्र भी बहुत प्रसिद्ध विद्वान् हुए थे। ये अपने पिता जीवितावस्था में ही राजा भैरवसिंह तथा उनके पुत्र रामचन्द्र सिंह के राज्याश्रित हुए। इनकी कृतियों में स्वरोदय टीका बहुत उत्तम ग्रंथ है। वाचस्पति मिश्र केशव मिश्र के निज पितामह थे। केशव मिश्र के दौहित्र सोदरपुर सं. चक्रमाणि सुत कृष्णानंद, वलभद्र, रामभ्रद पर्शुराम चारि जन छलथिन्ह। केशव मिश्र के ग्रंथों में– (1) द्वैत परिशिष्ट, (2) संख्या परिमाण, (3) तर्कभाषा, (4) अलंकार शेखर। संख्या परिमाण ग्रंथ के आदि भाग में लिखा गया है–

''तीर मुक्तिमहीपाल परिषन्मुख सूरिणा
श्रीकेशव कवीन्द्रेण निबंधोऽयं विधीयते।।''

केशवमिश्रक बनाओल औरो छोट–छीन प्रबंधन सम बहुत अछि। केशवमिश्रक हस्तलिखित पुस्तक प्रत्यक्ष खंड मूल चिंतामणिक टीका छैन्ह।

म.म. पुरारिमिश्र केशव मिश्र के शिष्य थे। इनके पिता का नाम रतिपति मिश्र था। इन्होंने श्राद्धकल्प ग्रंथ पर टीका, गोमिल ब्रह्मसूत्र पर शुभकर्म निर्णय लिखा था। भगीरथ ठाकुर– खंडवला राजवंश के संस्थापक पं. महेश ठाकुर के भाई थे। इनके द्वारा निर्मित ग्रंथों में (1) कुसुमांजलि प्रकाश प्रकाशिका, (2) किरणावलि प्रकाश–प्रकाशिका तथा लीलावती प्रकाश व्याख्या प्रसिद्ध है। मं. महेश ठाकुर के ग्रंथों में पक्षधर मिश्र ग्रणीत तत्व चिंतामणि आलोक पर तत्वदर्पण नामक भाष्य ग्रंथ प्रमाणिक ग्रंथों में से है। मिथिला की इस नव्य न्याय पद्धति के अंतिम समर्थकों में से पं. शंकर मिश्र तथा वाचस्पति मिश्र (द्वितीय) थे। इसके पश्चात् इसका उदय बंगाल के नवद्वीप में मिथिला के ही मेघावी पं. पक्षधर मिश्र के बंगाली शिष्य वसुदेव सार्वभौम तथा रघुनाथ तर्कशिरोमणि के सक्रिय उद्योग से हुआ। किंतु इसका यह अर्थ नहीं कि न्याय का यह दीप मिथिला से साफ ही उठ गया। यहां भी दुर्गादत्त मिश्र, देवनाथ ठाकुर, मधुसूदन ठाकुर आदि ऐसे विद्वान् हुए जिन्होंने इस ज्ञान दीप की अखंडता को कायम रखने का प्रयास किया। दुर्गादत्त मिश्र ने न्यायबोधिनी, देवनाथ ठाकुर ने तत्व चिंतामणि आलोक कंटकोक्षर नामक ग्रंथों का सृजन किया। पुरूषों के अतिरिक्त मिथिला ऐसी भी विदुषी महिलाएं सामने आयी जिसने दर्शन ज्ञान के क्षेत्र में अनोखा कार्य किया। राजा चन्द्रसिंह की रानी लछिमा देवी ऐसी ही महिला थी। इसने न्याय वैशेषिक पर पदार्थ चन्द्र नामक भाष्य लिखा। इन पंक्तियों की महिलाओं में राजा शिवसिंह की स्त्री रानी लखिमा देवी, राजा पद्मसिंह की मायां रानी विश्वास देवी तथा महाकवि विद्यापति की पुत्रवधू चन्द्रकला देवी का नाम उल्लेखनीय है। 17वीं से 19वीं शताब्दी के बीच भी पंडितप्रवर गोकुलनाथ उपाध्याय, पंडित सचल उपाध्याय आदि भी न्याय एवं मीमांसा के उद्मट विद्वान इसी मिथिला के गौरव रूप में। मुसलमानी शासकों के प्रभाव तथा शासनाधीन रहकर भी उनसे संघर्ष रत अवस्था में भी मिथिला के कर्णाट तथा ओइनवार वंशीय राजकुल के शासकों ने संस्कृत साहित्य के संवर्द्धन में सदा योगदान किया था। यहां तक नालंदा विश्रामशीला विश्वविद्यालय के मुसलमानों द्वारा नष्ट कर दिये जाने के बाद मात्र मिथिला का परंपराशील विद्यालय ही विद्याकेन्द्रों का कार्य करता रहा। कारण मिथिलाधिपति राजाओं ने मुसलमानी अधीश्वरों के अधीन रहकर भी साहित्य संवर्द्धन को किसी प्रकार से ठेस न पहुंचाया वरन् उनके प्रयास एवं राज्याश्रय से उस काल में भी संस्कृत साहित्य का सृजन होता रहा और ज्ञान भंडार के इस सक्रिय सहयोग से संस्कृत वाङ्मय की अभिवृद्धि

ही हुई। उस काल में संपूर्ण भारत के विद्वानों की दृष्टि में राष्ट्रभाषा के रूप में व्यापक भाषा संस्कृत ही थी जिसकी व्याप्ति कन्याकुमारी से हिमालय तक थी। भारत का कोई ऐसा प्रांत नहीं था जहां आज की तरह संस्कृत साहित्य की प्रबलता बहुलता नहीं रही हो। इसके विद्वान सर्वत्र प्राप्त एवं समाहृत थे। भारत के विभिन्न भागों से खासकर उत्तर भारत के कोने–कोने के विद्वान् अपनी जीविका की खोज के क्रम में भी मिथिला के राज दरबार में आते थे। दक्षिण बिहार तथा अन्य मुसलमान प्रभावित क्षेत्र के विद्वान पंडित भी मिथिला की ही राज रमा में प्रतिष्ठा तथा प्रश्रय के लिए आते थे। फलतः मिथिलांचल में संस्कृत वाङ्मय का विकास भी होता रहा तथा इसके भंडारण में भी अभिवृद्धि होती ही रही। अंतर हुआ कि इस आपदा की घड़ी में भी जबकि मुसलमानी शासक भाषा एवं धर्म दोनों ही पर अपना कब्जा करके अपनी संस्कृति को लादना चाहते थे, मिथिला के संस्कृतज्ञ पंडितों ने अपना ध्यान ज्योतिष, गणित, आयुर्वेद आदि से हटाकर धर्मशास्त्र एवं न्याय की ओर ही केन्द्रीत रखा और अपनी अमर कृतियों से ग्रंथ भंडार को भरना कायम रखा विद्यापति ने भी संस्कृत वाङ्मय को अपनी भू–परिक्रमा, पुरूष परीक्षा तथा लिखनावलि प्रदान की। ज्योतरीश्वर ने पंचशायक तथा रंगशेखर नामक श्रृंगार रस प्रधान ग्रंथों का संस्कृत में ही सृजन किया। धूर्त समागम भी इन्हीं की ऐसी रचना है जिससे संबंधित मानव जीवन के पहलूओं पर उस काल के संस्कृत साहित्यकारों के अपनी लेखनी उठायी तक नहीं थी। इसी पंक्ति में अच्युत का काव्य प्रकाश, पृथ्वीधर का मृच्छकटिकम् तथा श्रीधर आचार्य का अमरकोष प्रसिद्ध है। कर्णाट कुल के अंतिम राजा हरिसिंह देव के विदेश मंत्री तथा मुख्य न्यायाधीश चन्देश्वर ने स्मृति रत्नाकर नामक 1. कृत्य, 2. दान, 3. व्यवहार, 4. शुद्धि, 5. पूजा, 6. विवाद, 7. गर्हस्थ्य सात अध्यायों से युक्त पुस्तक लिखी। इसका छठा अध्याय विवाद रत्नाकर अत्यंत ही प्रसिद्ध है जिसमें 670 पृष्ठ है। अदालत एवं दीवानी संबंध नियमों के उल्लेख से भी यह ग्रंथ पूर्ण है। अंग्रेज सरकार ने भी मिथिला के हेतु उस ग्रंथ के निर्देश एवं नियमों को प्रामाणिक मानकर अपने न्यायालयों से भी मान्यता दी थी। फलतः उस पुस्तक का अंग्रेजी अनुवाद भी किया गया। चन्देश्वर के राजनीति रत्नाकर का प्रकाशन पटना के के.पी. जायसवाल ने किया था। मिथिला का यह नव्य न्याय बंगाल, महाराष्ट्र, दक्षिण भारत से कश्मीर तक समाहत हुआ, सर्वप्रियता प्राप्त की। इस प्रकार न्याय एवं धर्मशास्त्र के क्षेत्र में मिथिला की देन श्लाध्य रही।

मिथिला के विद्वान् का न्याय दर्शन

मिथिला के विद्वान् मिथिला की सीमाओं से बाहर जाकर भी बंध स्थानीय राजा महाराजाओं के दरवारों में अपनी अपनी प्रतिभा का उपयोग उन नृपतियों या राजकुमारों के निर्देश एवं आज्ञानुसार पुस्तकों के निर्माण में करते थे। इन पुस्तकों में आश्रयदाताओं की प्रशस्तियां तथा यज्ञोगान भी है। अभिलेख उत्कीर्ण कराने में भी इन विद्वानों की ही सरस सुंदर तथा कर्णसुखद भाषा का प्रयोग होता था। न्याय दर्शन के पारंगत विद्वान् पं. पद्मनाथ आश्रयदाता भूपति की प्रशंसा में वीरभद्र चंपू तथा पं. रघुदेव मिश्र ने कानज के बड़े–बड़े 14 पृष्ठों में मिथिला के खंडवाला कुल के भूपतियों की विरूदावलियों का अंकन किया। कवीन्द्र गंगानंद ने मृंगइति तथा मंदार मज़जरी नाटक की रचना की। जगन्नाथ मिश्र ने समातरंगिणी लिखा। कालिदास के कुमार सम्भव, मेघदूत, शिशुपाल वध जैसे ग्रंथों पर भी भाष्य प्रस्तुत किया गया। व्याकरण कोश छंद एवं अलंकार पर भी अनेकों पुस्तकों की रचना की गई। गंगानंद ने काव्यडाकिनी की रचनाकर काव्य रचना में आलंकारिक दोषों का दिग्दर्शन कराया। रामानंद ने रस तरंगिणी की रचना कर सभी प्रकार के अलंकारों का उल्लेख किया, जिसके उदाहरणों में स्वरति रचनाओं का प्रयोग किया। इसी कोटि के लेखकों में वेनीदत्त, चित्रधर तथा वृत्तसार के लेखक रमापति भी हैं। व्याकरण की पुस्तकों में विरिघर उपाध्याय ने विभक्त्यर्थ निर्णय ग्रंथ लिखा जो भाष्य होते हुए भी स्वतंत्र ग्रंथ कहा गया। इस पुस्तक में तर्क एवं व्याकरण का समन्वित रूप मिलता है। त्रिदमणि का अमरकोश पर भाष्य तथा परमानन्द का भगमिभार्गव कोश निर्मित हुआ। लोचन शर्मा ने राजतरंगिणी के द्वारा रागों का वर्णन कर संगीत क्षेत्र की रीक्तता पूर्ण की। बंगमणि ने अभिलाष प्रणीत संगीत चन्द्र पर भाष्य प्रस्तुत किया। ज्योतिष के ग्रंथों में नक्षत्रों एवं ग्रहों की चाल के संबंध में वैज्ञानिक ढंग से गणित के नियमानुसार गणना कर ग्रंथों का प्रणयन हुआ। पं. महेश ठाकुर ने अतिचार निर्णय नामक ज्योतिष ग्रंथ की रचना की। इनके पुत्र परमानंद ठाकुर ने गणित ज्योतिष पर सिद्धांतसुधा का निर्माण किया, हेमांगद ठाकुर ने ग्रहणमाला का सृजन किया। भरत उपाध्याय ने 17वीं शताब्दी में रसाल नामक पुस्तक लिखी जिसका संबंध फलित एवं गणित ज्योतिष से है। भाष्कराचार्य के ग्रंथ लीलावती पर भवेश ने अपने विचारानुसार भाष्य प्रस्तुत किया। ''अद्भूत दर्पण'' में

माधव शर्मा ने शुभ एवं अशुभ शकुनों का फलाफल निर्देश किया। शत्रुधन शर्मा ने मंत्रार्थ दीपिका में संध्या श्राद्ध आदि कर्मो के विषय में प्रयुक्त वैदिक मंत्रों का विवेचन कर उनका स्वष्टीकरण किया। राजा धीरसिंह के पुत्र राजकुमार गदाधर ने तंत्र प्रदीप तथा देवनाथ ठाकुर ने मंत्र कौमुदी तथा जगदानंद ने कुलदीपक का सृजन किया। नरसिंह ठाकुर ने शंकराचार्य की आनंद लहरी पर विद्वतापूर्ण भाष्य लिखा। धर्मशास्त्र की पुस्तकों में मानव जीवन के सभी पहलुओं पर विचार करते हुए धार्मिक, सामाजिक, वैयक्तिक तथा नित्य नैमित्तिक आचार संबंधी नियम बनाया गया, श्रुति स्मृति एवं पुराण वाक्यों का विश्लेषण विवेचन किया गया। इसके अलावे विभिन्न विषयों में शपथ ग्रहण, मांस भक्षण, नामकरण, अन्न प्राशन, चूड़ाकरण, उपनयन, विवाह, श्राद्ध, मृतक दाह–संस्कार आदि विषयों पर भी विचारपूर्ण निर्णय दिया गया। भवदेव मिश्र ने पातंजलि के योग सूत्र पर भाष्य लिखने के अतिरिक्त शांडिल्य के भक्ति सूत्र पर भी भाष्य ग्रंथ लिखा। संवेदशवृत्तान्त संग्रह में महेश ठाकुर ने बादशाह अकबर एवं उनके उत्तराधिकारियों का इतिहास संस्कृत गघ में लिखना प्रारंभ किया था जो पूर्ण नहीं हो सका महेश ठाकुर स्वयं ही अप्रतिम विद्वान् एवं लेखक थे। महेश कुल का शासन मिथिला पर भारत में मुसलमानी शासन के अन्त के पश्चात् भी अंग्रेजी शासन की समाप्ति तक बना रहा। मुसलमान शासक के समय से लेकर अंग्रेज शासक के काल तक मिथिला पर विद्या व्यसनी ब्राह्मण कुल के इस हिंदू राजा का ज्ञासन कायम रहने की वजह से संस्कृत साहित्य के विकास मार्ग में बाधा नहीं आ सकी।

इस प्रकार देखा जाता है कि वर्तमान युग में भी मिथिलांचल ऐसे अनेकानिक पंडित एवं विद्वान् हुए हैं जिन्होंने पूर्व के मनीषियों विचारकों विद्वानों की भांति संस्कृत साहित्य की अनेकों विद्याओं पर अपनी सेवा प्रस्तुत की, गहन एवं गंभीरतम विषयों का प्रतिपादन किया। कठिन से कठिन विषयों पर संस्कृत भाषा में दक्षतापूर्ण भाषण, संभाषण, वीद–विवाद, शास्त्रार्थ करने वाले अनेकों विद्वान हुए और आज भी मिथिलांचल में प्रायः प्रत्येक कोने में देखे ही जाते है। सर्वतंत्र स्वतंत्र पं. बच्चा झा, पं. शशिनाथ झा, पं. हरिहर कुपालु शास्त्री, पं. बालकृष्ण मिश्र आदि इसी कोटि की मिथिला विभूति हैं। संस्कृत तथा दर्शनशास्त्र के अनुपम सेवक महामहोपाध्याय डॉ. गंगानाथ झा (1871–1941), पं. रामावतार शर्मा (1877–1929) का नाम तो स्मरणीय है ही। पं. रामावतार शर्मा ने प्राचीन षट् दर्शनों के अतिरिक्त ''परमार्ध दर्शन'' का प्रणयन कर संस्कृत वाङ्मय का संवर्द्धन किया। 1923 ई. में यह परमार्थ दर्शन नामक पुस्तक प्रकाशित हुई और दर्शन ज्ञान के क्षेत्र में दाशनिकों के बीच महान् क्रांति उत्पन्न की। इस परमार्थ दर्शन में छः अध्याय है जिसके प्रत्येक अध्यायों को दो दो भागों में बांटा गया है, 445 संस्कृत सूत्र है। महान् दार्शनिक ऋषि गौतम कणाद की शैली में लिखा गया इस ग्रंथ में प्रत्येक जिज्ञासा का समाधान पूर्व पक्ष एवं उत्तर पक्ष के दो श्लोकों में अति संक्षेप में दिया गया है।[28] ''अधिकरण–रत्न–माला'' नामाधित इस प्रकार के श्लोकों के 120 जोड़े है। अपना स्वतंत्र विचार स्वरचित श्लोकों पाद टिप्पणियों में दिया गया है। इन सूत्रों पर गद्य में भाष्य लिखना भी इन्होंने स्वयं ही प्रारंभ किया था जिसका प्रथम अध्याय 1943 ई. में 'संस्कृत संजीवन' पत्रिका में प्रकाशित हुआ था। किंतु यह भाष्य उनकी मृत्यु के कारण पूर्ण नहीं हो सका। अनुभूति तथा अनुमान इन दो भागों में ही ये विवेचनीय ज्ञान के मूल की खोज करते थे। उसका अन्वेषण प्रस्तुत करते थे। इनका संस्कृत ज्ञान अगाध था तथा विवेचनाशक्ति भी लिक्षण थी। शर्मा जी का ईश्वरवाद उस अलौकिक एवं अमोघ शक्ति का द्योतक था जो सतत् सर्वात्मा सर्वभूत एवं सर्वव्यापी के रूप में स्वतः एवं स्वभावतः सहज ही कर्मशील है। शर्मा जी साक्षी एवं विषय के पृथकत्व में विश्वास नहीं करते थे। उनके मतानुसार कर्ता बिना कर्म के और कर्म बिना कर्ता के कदापि रह नहीं सकता है। ईश्वरत्व भाव में दोनों का समावेश आवश्यक है। कपिल के सांख्यवाद, चार्वाक के अनीश्वरवाद एवं शंकर के मायावाद तीनों के विरूद्ध उनका दोष दर्श था। उनका विचार था कि कपिल ने चेतन (साक्षी) एवं जड़ (विषय) के बीच कृत्रिम भेद को घुसाया है। चावांक ने साक्षी को विषय का रूप दिया है तथा शंकर ने विषय को मान लिया है। जैन दर्शन बौद्ध दर्शन एवं वैशेषिक न्याय के पर्वतकों ने भी भूल की है। एक को अनेक मान लेना सत्य के विपरीत है। जैन दर्शन में जीव का अनेकत्व एवं पृथकत्व दर्शाया गया है। बौद्ध दर्शन में संसार से विरक्ति के साथ कर्मवाद, अनात्मवाद और पुनरागमनवाद का समावेश है वैशेषिक दर्शन में परमाणुओं और उसके मूलभूत में बहुत्व का भाव संनिहित है। अतः वे सभी अमान्य और त्याज्य है। अपरिमेय से परिमिति के अंदर सीमित समझ लेना भी युक्तियुक्त एवं गुद्धिगम्य नहीं है। किसी व्यक्ति विशेष अथवा स्थान विशेष में अपरिमेय बुद्धि का होना यथार्थ नहीं है। इसके अवतारवाद, देवतावाद, तीर्थवाद आदि अयथार्थ मान्यता की सृष्टि होती है। सत्य के अन्वेषकों को शर्मा जी इन सबों से सावधान रहने की शिक्षा दी हैं।

मिथिला एक वेद भूमी

मिथिला सदा से वेद भूम रही है जहां के व्यक्ति ऋक् संहिता के मंत्रों से शुद्ध साहित्य, धर्म संस्कार, यश–संगीत, यश–विधि इत्यादि का ज्ञान ग्रहण करते आये हैं। इन्हीं मंत्रों के द्वारा इन्द्र वरूण अग्नि मरूत उषा सूर्य पर्व–इत्यादि की आराधना की जाती रही है। जन्म विवाह दान यज्ञ मृत्यु आदिक संस्कारों के साथ–साथ सृष्टि एवं दर्शन संबंधी ज्ञान तथा विराट पुरूष एवं उनकी सृष्टि संरचना की परिकल्पना का ज्ञान भी लोग इसी स्रोत से प्राप्त करते रहे है। साम यजुः काल से ही यहांसमाज में होत्री, उद्गात्री, अध्वर्यु एवं ब्राह्मण इन चार शाखाओं के रूप में पुरोहितवाद का प्रचलन है। इन चारों शाखाओं के पुरोहितों के तीन तीन प्रकार के सहायक पुरोहित भी होते थे। इस प्रकार 4, 3, 16 भागों में विभक्त पुरोहितों यह ऋत्विज वर्ग समाज में धर्म, कर्म, यज्ञ आदि कार्यों का संपादन करते कराते थे औश्र संपूर्ण यज्ञ कार्य का निरीक्षण इन सोलहों के अतिरिक्त सत्रहवां ऋत्विज सदस्यु करता था। इन शाखाओं में से ब्राह्मण शाखा का वर्ग संपूर्ण पूजा कार्य का निरीक्षण और निशिन करता था, यह तीनों वेदों में शिक्षा प्राप्त करता था प्रत्येक संदेहात्मक बात पर इन्हीं की अनुमति अंतिम मानी जाती थी। यज्ञ विधि के भिन्न–भिन्न भागों पर यह अपनी निर्णयात्मक अनुमति देते थे। सोम यज्ञ के संस्कार हेतु उद्गात्री को गान की सभी ध्वनियों का ज्ञान प्राप्त करना पड़ता था, इस गात्री जानेवाली क्रियाओं का संग्रह सामवेद हुआ, जिसकी मान्यता उनदिनों संगीत के पाठ्य ग्रंथ के रूप में हुई जिसमें संगीतों के पूर्ण पाठ थे जिसका उद्देश्य ही मात्र संगीत का ज्ञान कराना हुआ। सामान्यतया यज्ञ कार्य के समय मंत्र गान का कार्य होत्री करते थे और यज्ञों की क्रियाविधि से संबंधित कुछ मंत्र, प्रार्थनाएं अथवा आवाहन मंत्र का उच्चारण ऊध्वर्यु भी करते ि। अतः बाद में चलकर इन पुरोहितों को विषय के ज्ञान एवं उसकी निपुणता हेतु शिक्षा–सकुल का विकास हुआ और इसके प्रधान ग्रंथ यजुवेद माने गये जो गया मंत्रों का संग्रह अथवा–ऊध्वर्यु का प्रार्थना ग्रंथ हुआ। इस यजुवेद के कृषण और शुक्ल भागों में से शुक्ल यजुवेद में वही मंत्र प्रार्थनाएं तथा विधियां है जिनका पुरोहित उच्चारण करते थे। पिंड यज्ञ, पितृज्ञ, अग्नि होत्र, चातुर्मास्य, सजसूय–यज्ञ, ऊध्वमेघ अग्नि चयन आदि के साथ–साथ देश की भौतिक उन्नति के मंत्र भी इसी यजुर्वेद में दिये गये हैं। इसी प्रकार बाद में एक चौथे वेद अथव वेद का भी सर्जन हुआ जो अपने 20 विभक्त भागों में 731 गान के साथ प्रस्तुत किया गया। यह अथर्व वेद भारतवर्ष में चिकित्सा शास्त्र का सर्वप्रथम ग्रंथ रूप में मान्य हुआ जिसमें विभिन्न प्रकार के रोग निवारणार्थ जड़ी–बूटियों का उल्लेख किया गया है और ज्वर, पाण्डु, सन्निपात, शोध, क्षय, शर्पदंश, विषकोढ़ रक्त विकार आदि भयंकर रोगों की चिकित्सा इन्हीं जड़ी–बूटियों से बतलायी गयी है। एक भाग में गृहस्थ जीवन के जन्म, विवाह, मृत्यु इत्यादि संस्कारों का कथन विधि के साथ मंत्रों में कहा गया है। इसके साथ ही हिंसक पशुओं से रक्षा, प्राकृतिक प्रकोपों से निवारण, प्राकृतिक उत्पातों का विनाश, रोग, शत्रु आदि से रक्षा, भौतिक संपन्नता आदि हेतु भी तंत्र मंत्रों का समावेश किया गया है। इस अथर्व वेद में राजाओं, राजपरिषदों एवं आर्थिक राजनैतिक तथा दार्शनिक अवस्थाओं का उल्लेख करते हुए सांसारिक ज्ञान विज्ञान का भी विशद् वर्णन किया गया है।

सारांश

प्रत्येक ऋषि तथा मुनि ने तपस्या एवं साधना से प्राप्त अपने स्वानुभूति ज्ञान को अपने पुत्र अथवा शिष्य को प्रदान करते थे। इसी प्रकार से इस वैदिक काल में वेदार्जित ज्ञान का प्रचार प्रसार इस पारिवारिक स्कूल के रूप में शुरू हुआ। शिक्षक अपने ज्ञान को विद्यार्थियों से कंठाग्र कराता था। और अपनी योग्यता एवं उत्कण्ठा तथा संस्कार से विद्यार्थी ज्ञान प्राप्त करता था। सायण, के महाप्रज्ञ, मध्यम प्रज्ञ तथा अल्पज्ञः विद्यार्थियों की कोटि से यह भी स्पष्ट होता है कि विद्यार्थी भी विभिन्न स्तर के होते थे जिनकी मानसिकता अलग अलग होती थी। प्रातः काल ब्राह्म मुहूर्त में पक्षियों के जगने से पूर्व से ही विद्यार्थी वेद पाठ प्रारंभ कर देते थे। मंत्र गान एक ललित कला के रूप में विकसित हो गया था। गृह ही विद्यालय था। शिक्षक पिता के रूप में विद्यार्थी का संरक्षक होता था, उसके खान–पान की भी स्वयं व्यवस्था करता था। गुरू गृह में विद्यार्थी का प्रवेश केवल उसके नैतिक बल और सदाचार के आधार पर होता था। ब्रह्मचर्य का जीवन अनिवार्य था। विवाहित युवक का आश्रम से रहना निषेध था। ब्रह्मचर्य का अर्थ इंद्रिय निग्रह सात्तिवकता तथा ब्रह्म में स्थित रहना था। गुरू सेवा विद्यार्थी का परम कर्त्तव्य था। आश्रमवासी विद्यार्थी गुरू सेवा में तत्पर रहते थे, गुरू के गृह कार्य का मार विद्यार्थी पर ही होता था। विद्यार्थी मन वाणी कर्मना गुरू भक्ति होते थे, पिता या ईश्वर के ध्यान गुरू की

उपासना भी ये विद्यार्थी करते थे। इस प्रकार विद्याथी का गुरू गृह में रह कर गुरू की सेवा करना तथा गुरू से शिक्षा प्राप्त करना ऐसी ही शिक्षा प्रणाली प्रारंभ हो गई जिसमें गुरू के निकटतम संपर्क में आने से विद्यार्थी के अंदर स्वाभाविक रूप से ही गुरू के गुणों का समावेश हो जाता था। गुरू ही आदर्शों, परंपराओं तथा सामाजिक नीतियों का प्रतीक हो जाते थे और ऐसी अवस्था में विद्यार्थी एवं गुरू का यह संबंध एवं संपर्क ही विद्यार्थियों को संपूर्ण सामाजिक परंपराओं का साक्षात्कार भी करा देता था। गुरू के लिए इंधन जुटाना, पानी लाना, उनके अन्य गृह कार्यों को करना के माध्यम से विद्यार्थी जीवनोपयोगी शिक्षा भी प्राप्त कर लेता था। इस प्रकार से वह गृहस्थी के शिक्षा के साथ–साथ श्रम का गौरव पाठ तथा सेवा का पदार्थ पाठ भी वहीं से प्राप्त कर लेता था। गुरू आश्रम में गायों की संख्या भी प्रचूर होती थी। छान्दोग्य उपनिषद् के महासंत सत्यकाम की गायों की संख्या 400 से 1000 तक हो गयी थी। वृहदारण्यक उपनिषद में भी याज्ञवल्व्य की कथा प्राप्त है जिन्हें राजा जनक से ज्ञान के पारितोषिक रूप में 1000 गायें प्राप्त हुई थी। इन गायों की सेवा उनका संरक्षण आदि का कार्य ऋषि मुनि के शिष्य ही किया करते थे, और इस माध्यम से गृहस्थ जीवन की व्यावहारिक शिक्षा भी लोग ग्रहण कर लेते थे। ऋग्वेद में ऐसे भी उदाहरण मिलते है कि एक ऋषि स्वयं कवि थे, उन के पिता भिषग अर्थात् डॉक्टर और उनकी मां उपल–प्रक्षिणी अर्थात् आटा पीसने वाली थी। इस प्रकार उच्चतम शिक्षा में भी शारीरिक श्रम का महत्व था। विद्यार्थी आश्रम के खर्च हेतु पात्र लेकर भिक्षाटन भी करते थे, किंतु इस भिक्षाटन का उद्देश्य परमुखापेक्षिता न होकर उनमें त्याग तथा मानवीय गुणों का विकास करता था, उसके अहंकार तथा उसकी उच्छृंखलता का विनाश करता था और उन्हें व्यावहारिक जगत के संमुख ला खड़ा करता था। यह विद्यार्थी के लिए स्वावलंबन तथा समाज के प्रति उसके कर्त्तव्य और कृतज्ञता का पदार्थ पाट था। ब्राह्मण ग्रंथों में शिक्षा के इस महत्व को स्वीकारा गया है। भिक्षाटन की इस प्रथा का पालन गुरूकुल में रहने वाले निर्धान, धनवान, राजकुमार तथा कृषक सभी विद्यार्थियों की करना पड़ता था, और ये विद्यार्थी स्वतः विनयशील हो जाते थे। इस प्रकार से वैदिक काल में वेद संहिताओं, ब्राह्मणों, आरण्यकों और उपनिषदों के ज्ञान की शिक्षा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तान्तरित होती रही, जो अपने उत्तर काल में यानी उत्तर वैदिक काल में आकर कुछ अंतर का रूप धारण करता है। यहां शिष्य प्रमुख हुआ, गुरू शिष्य में प्रश्नोत्तर प्रणाली चल पड़ी, और इसी माध्यम से गुरू भी समस्याओं का समाधान तथा विद्यार्थियों की शंका निराकरण किया जाता था। इस काल में ये शिष्य श्रोता ही नहीं रहकर हर क्षण जागरूक एवं क्रियाशील रहने लगे। तब बृहदारण्यक उपनिषद में शिक्षा की तीन प्रमुख पद्धतियों का उल्लेख मिलता है– 1. श्रवण, 2. मनन, 3. निदिध्यासन। श्रवण के अंतर्गत– 1. उपकर्म, 2. अभ्यास, 3. अपूवता, 4. फल, 5. अर्थवाद, 6. उपपत्ति आता है। उपकर्म वेद पढ़ने से पूर्व किया जाता था, अपूवता का संबंध अर्थ का तत्काल समझ लेने से था उपपत्ति में परिणाम व सार का ज्ञान प्राप्त हो जाता था। शिक्षा संस्था के रूप में गुरू गृह के अतिरिकत परिषद एवं सम्मेलन का भी प्रचलन हुआ। अपने माता–पिता को छोड़कर अपनी प्रारंभिक अवस्था में ही बालक अपने आध्यात्मिक पिता के घर जाता था और लगभग 12 वर्षों तक विद्या लाभ कर विद्वान होकर वह घर लौटता था। परिषद में उच्च शिक्षा के विद्यार्थी इकट्ठे होकर तर्क वितर्क तथा भाषणों के द्वारा अपनी ज्ञान क्षुधा को मिटाते थे। सत्य और ज्ञान की खोज में आगे चलने वाले विद्यार्थी इन परिषदों के द्वारा ज्ञानार्जन करते थे। इसके अतिरिक्त कभी–कभी बड़े–बड़े राजा अपने यहां पंपूर्ण देश के विद्वानों, ऋषियों तथा आध्यात्मिक गुरूओं को आमंत्रित करते थे, सर्वोत्तम को विशेष पुरस्कार भी प्रदान किया जाता था। इस माध्यम से भी जिज्ञासु विद्यार्थी एवं विद्वान् शिक्षा प्राप्त करते थे। राजा दरवारों में आयोजित देश दशान्तरों के विद्वानों का भाषण भी शिक्षा संस्थावत् ही कार्य करते थे। ऐसी ''वैदिक स्कूलों का देश भर में जाल फैल गया तथा भिन्न–भिन्न वेदों में भिन्न–भिन्न स्कूल विशेषता प्राप्त करने लगे। इन ज्ञान केंद्रों में भारतीय प्राचीन जीवन का वास्तविक रूप झलकता है। यहां शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य जीवन का सर्वीगीन चरम विकास हमें देखने को मिलता है। आधुनिक शिक्षा हमें केवल भौतिक विकास की ओर ले जाती है जिससे मानव जीवन की एकता नष्ट होकर मनुष्य जाति वर्गो में बंट जाती है किंतु वैदिक शिक्षा ने हमें जीवन में साम्य का पाठ पढ़ाया।

संदर्भ श्रोतः–

1. झा ऋद्धिनाथ–मिथिला बालविनोद, राजप्रेस, दरभंगा, 1345.
2. झा चंदा–मिथिला भाषा रामायण, मैथिली अकादमी, पटना–1980.

3. झा मुकुंद बख्शी–मिथिला भाषामय इतिहास, विद्याविलास प्रेस, बनारस सीटी, प्रथम संस्करण।
4. झा यशोधर–मिथिला वैभव, इंडियन नेशन प्रेस, पटना, 1963.
5. झा रामदेव – मैथिली लोकसाहित्य : स्वरूप ओ सौन्दर्य, मिथिला रिसर्च सोसाइटी कबिलपुर, ल० सराय दरभंगा–846001, 2002.
6. ठाकुर जीवानंद–मैथिली डाक, मैथिली साहित्य परिषद्, दरभंगा, 1950.
7. मिश्र उमेश – मैथिली संस्कृत ओ सभ्यता, वैदेही समिति, दरभंगा–1953.
8. मिश्र कृष्णकान्त – मैथिली साहित्यक इतिहास, मैथिली प्रकाशन, ल० सराय, 1955.
9. सिंह, शिवमूर्ति 'वत्स' (सं०)–मिथिला की लोक कथाएँ, आत्माराम एंड संस, दिल्ली, 1961.
10. मिथिला तत्व विमर्श– पृ. 75
11. मिथिला का इतिहास– डॉ. रा.प्र. शर्मा, पृ. 514
12. प्राचार्य चौधरी राधाकृष्ण, मिथिला इन दि एजे ऑफ विद्यापति, चौखम्बा संस्कृत सीरीज वाराणसी
13. झा श्री लक्ष्मीनाथ, मिथिला की सांस्कृतिक लोक चित्रकला, 1962– लक्ष्मीनाथ झा ग्राम– सरिसव, दरभंगा
14. डॉ. शर्मा रामप्रकाश, मिथिला का इतिहास, 1979– कामेश्वर सिंह संस्कृत विश्वविद्यालय, दरभंगा
15. सुमन सुरेन्द्र झा, मिथिला मिहिर–1936 –दरभंगा
16. डॉ. ठाकुर उपेन्द्र, हिस्ट्री ऑफ मिथिला–1959, मिथिला इंस्टीच्यूट ग्रंथमाला–3 स्टडीज नं. 1